इकाई 6 पारसंस और डेविस

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको अमेरिका के दो प्रसिद्ध समाज विज्ञानियों के सामाजिक स्तरीकरण सिद्धांत के बारे में बताएंगे। ये समाजशास्त्री हैं डेविस और विलबर्ट मूर जिनके सिद्धांत को सामाजिक स्तरीकरण का प्रकार्यात्मक सिद्धांत कहा जाता है। सामाजिक स्तरीकरण के विश्लेषण के लिए इस सिद्धांत को हालांकि समाजशास्त्रियों ने मोटे तौर पर स्वीकार कर लिया है लेकिन इसकी आलोचना भी खूब होती है। यहां हम इस सिद्धांत के सभी पहलुओं पर दृष्टि डालेंगे। इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- इस सिद्धांत की पृष्ठभूमि को समझ जाएंगे;
- यह सिद्धांत क्या कहता है, इसे समझ पाएंगे;
- उन समस्याओं को समझ सकेंगे जिनसे इस सिद्धांत के प्रवर्तक को भी खुद जूझना पड़ा था; और
- समाज को समझने में इस सिद्धांत के महत्व को जान सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

प्रकार्यात्मक सिद्धांत यह बताने का प्रयास करता है कि समाज क्यों जीवित रह पाता है। इस सिद्धांत के मूल में यह धारणा है कि सभी समाज स्थिरता और शांति चाहते हैं। समाज में लोग अराजकता और भ्रम नहीं चाहते क्योंकि इससे उनके दैनिक क्रियाकलापों में विघ्न पड़ता है। इसीलिए समाज चाहते हैं कि उनमें व्यवस्था और अनुशासन हो। ये समाज में स्थिरता लाने के उपाय हैं।

प्रकार्यवादी समाज को एक जीव के रूप में देखते हैं। इस जीव के अलग-अलग अंग होते हैं। ये अंग एक समग्र इकाई में समेकित होते हैं और ये परस्पर सहयोग से काम करते हैं। मानव शरीर एक जटिल जीव है जिसके शरीर में विभिन्न अंग-प्रत्यंग होते हैं। इसका प्रत्येक अंग एक-दूसरे से अलग होता है मगर वे सभी मिलकर एक समेकित इकाई की रचना करते हैं। इसी प्रकार समाज में भी अलग-अलग अंग होते हैं जो अलग-अलग भूमिका अदा करते हैं। अगर हम समाज की पूरी तस्वीर पर नजर डालें तो हम देखेंगे कि ये अंग जो भूमिकाएं अदा करते हैं वे समूचे समाज में स्थिरता लाती हैं, दूसरी तरह से कहें तो ये सारी भूमिकाएं समाज को एकता के सूत्र में बांधती हैं। उदाहरण के लिए, हम पाते हैं कि लोग तरह-तरह के पेशों और क्रियाकलापों में लगे हुए हैं। जैसे डॉक्टर, वकील, शिक्षक, छात्र, श्रमिक, उद्योगपति, किसान,

जुलाहे इत्यादि। इन लोगों के क्रियाकलाप हालांकि एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं, पर समाज सुचारु रूप से चलने के लिए सबकी जरूरत होती है। इन्हें पृथक अंग माना जा सकता है जो समाज के एकीकरण के लिए मिल-जुलकर काम करते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रकार्यवादी सिद्धांत के मुताबिक सामाजिक ढांचे का हर घटक विशिष्ट कार्यों को पूरा करता है जो समाज में स्थिरता को कायम रखने के लिए जरूरी हैं। ये कार्य समाज़ को जीवित रखने के लिए जरूरी हैं। इसलिए समाज की अखंडता और स्थिरता के लिए उसमें स्तरीकरण प्रणाली का होना भी जरूरी है।

6.2 सामाजिक स्तरीकरण का प्रकार्यवादी सिद्धांत

प्रकार्यवादी सिद्धांतकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि सभी समाज स्तरों में बंटे होते हैं या वे स्तरित रहते हैं। दूसरे शब्दों में, समाज के विभिन्न सदस्य जो कार्य करते हैं वे असल में इसको जीवित रखने के लिए किए जाते हैं। मगर सभी कार्यों को समान दर्जा नहीं दिया जाता। कुछ कार्य अन्य कार्यों से श्रेष्ठ होते हैं। इसलिए उन्हें ऊंचा दर्जा दिया जाता है। जो लोग इन कार्यों को अंजाम देते हैं उन्हें अन्य लोगों से श्रेष्ठ समझा जाता है। सामाजिक स्तरीकरण का प्रकार्यवादी सिद्धांत यह समझाने का प्रयत्न करता है कि सामाजिक असमानताएं किस तरह उत्पन्न होती हैं और समाज के लिए वे क्यों जरूरी हैं।

प्रकार्यवादी यह मानकर चलते हैं कि समाज की अपनी कुछ मूलभूत जरूरतें होती हैं। इन जरूरतों की पूर्ति हर हाल में होनी चाहिए। अन्यथा समाज में अस्थिरता उत्पन्न हो जाएगी। इन जरूरतों को प्रकार्यात्मक पूवपिक्षा कहा गया है। दूसरा, ये प्रकार्यात्मक पूवपिक्षाएं हालांकि महत्वपूर्ण हैं, लेकिन उनका स्थान उन्हें समाज में मिलने वाले महत्व के अनुसार तय होता है उदाहरण के लिए, एक कारखाना चलाने के लिए हमें मजदूर और प्रबंधक दोनों की जरूरत पड़ती है। कोई भी कारखाना सिर्फ मजदूरों की बदौलत या सिर्फ प्रबंधकों की बदौलत नहीं चल सकता है। इसलिए मजदूर और प्रबंधक दोनों उसके अभिन्न, अनिवार्य अंग हैं। मगर यहां यह मानना सरासर गलत होगा कि चूंकि दोनों जरूरी हैं इसलिए दोनों की हैसियत भी बराबर होनी चाहिए। वास्तव में ऐसा नहीं होता। प्रबंधकों को श्रमिकों से ऊंचा दर्जा हासिल होता है इसलिए इस अभिन्नता या अखंडता का मतलब समानता नहीं है। इसका यह मतलब है कि सभी अलग-अलग समूह मिल जुलकर स्थिरता की दिशा में काम करते हैं। मगर वे इसलिए ऐसा करते हैं क्योंकि वे एक क्रम परंपरा में स्तरित रहते हैं। इस क्रम परंपरा का आधार क्या है और आखिर क्यों लोग इसे स्वीकार कर लेते हैं? प्रकार्यवादी सिद्धांतकारों ने इन प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास किया है। अब हम प्रकार्यवादी सिद्धांतकारों में सबसे ख्यातनाम टैलकॉट पारसंस के विचारों को जानेंगे।

6.3 टैलकॉट पारसंस का नज़रिया

पारसंस के सामाजिक प्रणालियों के विश्लेषण का केन्द्र बिन्दु व्यवस्था का प्रश्न है। उनका मानना था कि सभी सामाजिक प्रणालियां इसलिए उत्पन्न हुईं कि इन प्रणालियों में विद्यमान लोग व्यवस्था और स्थिरता चाहते थे। पारसंस के अनुसार सामाजिक प्रणाली तब उत्पन्न होती है जब दो या अधिक लोग बंधन की स्थिति में परस्पर व्यवहार करते हैं और उनके कार्य दूसरों को प्रभावित करते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि सामाजिक प्रणाली में सबसे पहले लोगों का समूह होना चाहिए। यह समूह दो व्यक्तियों का या देश भी हो सकता है। इसका दूसरा अर्थ यह है कि ये लोग एक साझी सीमा के भीतर विद्यमान रहते हैं। तीसरा, वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से करते हैं। अंततः उनके कार्य एक-दूसरे के आचरण को प्रभावित करते हैं।

इस तरह की क्रिया को हम अपने दैनिक जीवन में देख सकते हैं। अपने दैनिक जीवन में हम कई लोगों से मिलते-जुलते हैं। ऐसा करते समय हम उस व्यक्ति से प्रभावित होते हैं जिससे हम व्यवहार करते हैं। उदाहरण के लिए, आप जब अपने पिता या किसी बुजुर्ग से बात कर रहे हों तो उस समय आप एक खास तरह से आचरण करते हैं। जब आप अपने दोस्तों और साथियों से बातचीत करते हैं तो आपका आचरण भिन्न होता है। आप ऐसा क्यों करते हैं? सभी लोगों के साथ पारस्परिक व्यवहार करते समय आपको

आचरण एक समान क्यों नहीं होता? पारसंस के अनुसार ऐसा इसलिए होता हैं कि आप जब किसी व्यक्ति के साथ परस्पर व्यवहार करते हैं तो आपका कार्य (आचरण) इस व्यक्ति के कार्यों से प्रभावित होता है।

यह आपको भिन्न-भिन्न स्थितियों में अपना व्यवहार बदलने या उनके अनुकूल ढालने के लिए बाध्य करता है।

अभ्यास

अपने अध्ययन केन्द्र के अन्य छात्रों के साथ समाज में व्यवस्था के प्रश्न पर चर्चा कीजिए। अपनी जानकारी को नोटबुक में लिख लीजिए।

विभिन्न स्थितियों में आपके आचरण का नियमन मुख्यत: इसलिए होता है कि एक व्यक्ति के रूप में आप एक निश्चित तरीके से आचरण करते हैं क्योंकि इस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति उसी तरह से व्यवहार करता है। फिर आप यह भी जानते हैं कि यदि आप निर्दिष्ट तरीके या तहजीब से व्यवहार नहीं करते तो इससे अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। उदाहरणत: अगर आप अपने किसी मित्र से रुखे और अशिष्ट ढंग से पेश आते हैं जैसे कि वह आपका दुश्मन हो, तो आपके इस व्यवहार से वैमनष्य की स्थिति पैदा हो जाएगी और हो सकता है आप उसकी मित्रता से हाथ धो बैठें। इसीलिए आप उससे वैसा ही बर्ताव करेंगे जिसकी आप से अपेक्षा की जाती है।

इसलिए हम यह मान सकते हैं कि किसी भी व्यक्ति का कार्य इससे निर्धारित होता है कि वह किससे पारस्परिक-व्यवहार कर रहा है। बदले में यह समाज या सामाजिक प्रणाली विशेष के आचरण नियमों से तय होता है। आचरण के नियम लोगों की आम सहमति पर आधारित होते हैं। और यही वजह है कि इन्हें सही और शिष्ट माना जाता है। इसी आम सहमति को पारसंस मूल्य कहते हैं। इसलिए सामाजिक मूल्य एक समाज के साझे विश्वास हैं। इन मूल्यों को जिस तरह से व्यवहार में लाया जाता है (इन मूल्यों के फलस्वरूप किए जाने वाले कार्य), जिन्हें आदर्श या प्रतिमान कहा जाता है। इस प्रकार सामाजिक प्रतिमान व्यवहार के नियम हैं।

पारसंस कहते हैं कि सामाजिक मूल्य और प्रतिमान प्रत्येक समाज की व्यवस्था और स्थिरता को बनाए रखने की आवश्यकता से उत्पन्न होते हैं। मूल्य और प्रतिमान हर समाज में अलग होते हैं क्योंकि प्रत्येक समाज की जरूरतें अलग होती हैं। मगर हर समाज की मूल्य व्यवस्था में उभय कारक स्थिरता की आवश्यकता है। इसलिए प्रत्येक समाज अपने मूल्यों को ईजाद करता है जो उसके इस उद्देश्य की पूर्ति अच्छी तरह से करते हैं।

6.3.1 मूल्य मतैक्य और स्तरीकरण

किसी समाज की मूल्य व्यवस्था किस तरह उभरती है? इस प्रश्न के उत्तर में पारसंस जोर देकर कहते हैं कि मूल्य किसी व्यक्ति के मस्तिष्क से जन्म नहीं लेते (जैसा कि आरंभिक काल में राजा या पुजारी के बारे में माना जाता था)। मूल्य साझे विश्वास हैं। इसका यही मतलब है कि समाज के सभी सदस्य यह मान कर चलते हैं कि ये प्रदत्त मूल्य ही सबसे उत्तम युक्ति हैं जिसके जरिए उनके समाज में स्थिरता कायम रखी जा सकती है। इस तरह मूल्य सिर्फ साझे विश्वास ही नहीं हैं, बल्कि वे समाज के सदस्यों की सहमति से उत्पन्न होते हैं। यह सहमति या मतैक्य इसलिए उत्पन्न होता है कि समाज के सदस्य अपने रोजाना के जीवन में व्यवस्था और स्थिरता चाहते हैं। इसलिए व्यवस्था, स्थिरता और सहयोग इस मूल्य मतैक्य पर निर्भर करते हैं। समाज के सदस्यों में यह सहमति होती है कि सभी के लिए क्या अच्छा है।

बॉक्स 6.01

पारसंस तर्क देते हैं कि मूल्यों की उपस्थिति से यही निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्तियों का मूल्यांकन होता है और फिर उन्हें एक तरह के श्रेणी क्रम में रखा जाता है। इसलिए समाज में विभिन्न स्तर क्रम परंपरा पर आधारित होते हैं जो वास्तव में उसकी स्तरीकरण प्रणाली ही होती है। पारसंस कहते हैं कि "स्तरीकरण सामाजिक प्रणाली में साझी मूल्य व्यवस्था के अनुसार इकाइयों का श्रेणीकरण है।" मूल्य व्यवस्था ही समाज में स्तरीकरण को जन्म देती है। स्तरों में भेदों को भी मूल्य व्यवस्था ही सही ठहराती है।

किसी भी समाज में जो लोग सामाजिक मूल्यों के अनुसार कार्यों को अंजाम देते हैं या आचरण करते हैं, उन्हें बेहतर पारितोषिक दिया जाता है। पारसंस के अनुसार इन पारितोषिकों का स्वरूप इस बात पर निर्भर करता है कि समाज के मूल्य किसे सर्वश्रेष्ठ ठहराते हैं। उदाहरण के लिए, राजपूतों में साहस और वीरता को अधिक महत्व देने की परंपरा रही है। इसलिए जो भी व्यक्ति इन गुणों में खरा उतरता था उसे बेहतर पुरस्कार और ऊंचा दर्जा दिया जाता था। अन्य समुदायों में व्यापार में प्रवीणता और व्यापार में मुनाफा कमाने की क्षमता को अधिक महत्व दिया जा सकता है। इसलिए इन क्षेत्रों में अपने को सिद्ध करने वाले लोगों को ऊंचा दर्जा दिया जा सकता है। इसी प्रकार सभी सामाजिक प्रणालियों में मूल्य व्यवस्था कुछ गुणों पर ऊंचे पारितोषिक तो अन्य गुणों पर कम पारितोषिक देती है। मगर कोई व्यक्ति अगर इन सामाजिक मूल्यों की अवहेलना करता है तो उसे दंड दिया जाता है। इसलिए जिस समाज में वीरता को अधिक महत्व दिया जाता है, उसमें कायरता के लक्षण दिखाने वाला व्यक्ति श्रेणीक्रम में अपना स्थान खो बैठता है।

पारसंस के अनुसार आधुनिक औद्योगिक समाज में व्यक्ति की निजी उपलब्धियों को उच्च मान दिया जाता है। इस तरह के समाज में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन पर अधिक जोर दिया जाता है। इसलिए पारसंस कहते हैं कि इन समाजों, विशेषकर अमेरिका, में मूल्य व्यवस्था "अर्थव्यवस्था के भीतर उत्पादक क्रियाकलापों को प्रमुखता" देती है। इसलिए जो लोग इनमें प्रवीण होते हैं उन्हें बेहतर पारितोषिक दिया जाता है। ऐसे समाज में एक श्रमिक में अगर आवश्यक गुण विद्यमान हैं तो वह भी एक सफल उद्योगपति बन सकता है। एक बार वह अपनी मेधा, अपनी योग्यता का सिक्का जमा लेता है तो सामाजिक प्रणाली में उसका रुतबा ऊंचा हो जाता है और उसे प्रतिष्ठा भी खूब मिलती है। इसी प्रकार कंपनियों में जो अधिकारी ओजस्वी और सफल होते हैं उन्हें वेतन और अन्य लाभों के रूप में अधिक पारितोषिक मिलते हैं। इससे स्तरीकरण प्रणाली में उनका स्थान ऊंचा हो जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) प्रकार्यवादी सिद्धांत के बारे में पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

2) मूल्य मतैक्य किसे कहते हैं और सामाजिक स्तरीकरण में इसकी क्या भूमिका है? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक स्तरीकरण की व्याख्या करते हुए पारसंस ने लोगों में मौजूद भेदों, विषमताओं को महत्ता दी। उनका कहना था कि ये विषमताएं समाज की मूल्य व्यवस्था के संगत होती हैं और इसलिए ये समाज की स्थिरता के लिए अनिवार्य होती हैं। अब चूंकि समाज की मूल्य व्यवस्था असमानताओं को सही ठहराती है इसलिए व्यवहार में निम्न श्रेणी क्रम में विद्यमान लोगों समेत सभी लोग इन्हें स्वीकार कर लेते हैं। उदाहरण के लिए, औद्योगिक संगठनों में विस्तृत स्तरीकरण प्रणालियां विद्यमान होती हैं। प्रवीणताओं और अनुभव के आधार पर श्रमिकों में भी भेद पाए जाते हैं। जो श्रमिक अपने कार्य में प्रवीण होते हैं और जिनमें नेतृत्व के गुण मौजूद होते हैं, उन्हें पदोन्नति, वेतन में वृद्धि इत्यादि देकर पुरस्कृत किया जाता है। इसी प्रकार श्रम और प्रबंध दोनों किसी औद्योगिक संगठन को चलाने के लिए हालांकि जरूरी हैं लेकिन प्रबंधक का दर्जा उसमें हमेशा श्रमिकों से ऊंचा रहता है। इन विषमताओं के कारण दोनों में संघर्ष भी होता है मगर चूंकि इन विषमताओं के मूल में मूल्य व्यवस्था का हाथ होता है इसलिए इन मुद्दों पर गहरे संघर्ष के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। एक कट्टरपंथी मजदूर संघ भी यह बात स्वीकार करता है कि प्रबंधन का दर्जा ऊंचा होता है। ऐसा इस कारण होता है मूल्य व्यवस्था इन विषमताओं को स्वीकार करती है। इसलिए पारसंस तर्क देते हैं कि लोग अमूमन इन विषमताओं को स्वीकार करते हैं और इस तरह बड़ा संघर्ष होने से रुक जाता है। सभी लोग चाहे वे श्रमिक हों या प्रबंधन में हों, मानते हैं कि यह व्यवस्था सबसे उत्तम है। अगर इन मूल्यों को चुनौती दी गई तो समाज में स्थिरता उत्पन्न हो जाएगी।

पारसंस के सिद्धांत का सार हम इस प्रकार दे सकते हैं :

- मूल्य मतैक्य सभी समाजों का अनिवार्य अंग है।
- सामाजिक स्तरीकरण सभी समाजों में अपरिहार्य है।
- समाज में व्यवस्था और स्थिरता बनाए रखने के लिए स्तरीकरण प्रणाली को न्यायोचित, सही और उचित माना जाता है। इससे भिन्न-भिन्न लोगों को भिन्न-भिन्न पारितोषिक मिलता है।
- जिन लोगों को पुरस्कृत किया जाता है और जिन्हें पुरस्कृत नहीं किया जाता है, उनके बीच संघर्ष हो सकता है। मगर इससे मौजूद प्रणाली को कोई बड़ा खतरा पैदा नहीं होता क्योंकि मूल्य व्यवस्था इस द्वंद्व को रोके रखती है।

6.4 डेविस और मूर का सिद्धांत

सामाजिक स्तरीकरण के प्रकार्यवादी सिद्धांत को किंग्सले डेविस और विल्बर्ट मूर ने और विकसित किया। ये दोनों अमेरिका के ख्यातनाम समाजशास्त्री हैं और टैलकॉट पारसंस के शिष्य रह चुके हैं। इन दोनों समाजशास्त्रियों ने अपने विचार एक लेख में विस्तार से प्रस्तुत किए थे, जिसका शीर्षक था: "सम प्रिंसिपल्स ऑफ स्ट्रैटिफिकेशन" (स्तरीकरण के कुछ सिद्धांत)। यह लेख जितना लोकप्रिय हुआ इसकी आलोचना भी उतनी ही हुई। जहां प्रकार्यवादी सिद्धांतकारों ने उनके विचारों का समर्थन किया तो वहीं अन्य समाजशास्त्रियों ने उनकी कटु आलोचना की। उनके विचारों को असमानता का प्रकार्यवादी सिद्धांत का नाम भी दिया जाता है। आइए पहले हम उनकी प्रस्थापनाओं पर चर्चा करेंगे और उसके बाद हम इनकी आलोचना पर दृष्टि डालेंगे।

पारसंस ने समाज में स्तरीकरण की जरूरत पर जोर दिया था। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि हर समाज में यह स्तरीकरण अपरिहार्य होता है। डेविस और मूर ने इस प्रस्थापना को विस्तार दिया और यह जानने का प्रयास किया कि समाज में स्तरीकरण किस तरह प्रभावी होता है। उन्होंने सबसे बड़ा प्रश्न यह रखा कि कुछ स्थानों की प्रतिष्ठा अलग-अलग क्यों होती है? व्यक्तियों को ये स्थान कैसे मिलते हैं?

राहगीरों के जूतों की मरम्मत करता हुआ एक मोची
साभार : टी. कपूर

6.4.1 समाज की प्रकार्यात्मक पूवपिक्षाएं

दोनों लेखक पारसंस के इस विचार का समर्थन करते हैं कि समाजों के वजूद, उनके अस्तित्व का आधार व्यवस्था और स्थिरता हैं। हर समाज की अपनी प्रकार्यात्मक पूवपिक्षाएं होती हैं जो उन्हें जीवित रहने और सुचारु रूप से चलने में सहायक होती हैं। आइए, इस बात को आगे बढ़ाते हैं। समाज व्यक्तियों का समूह, उनका जमावड़ा भर नहीं होता। इन व्यक्तियों को निर्दिष्ट कार्य पूरे करने होते हैं ताकि समाज की आवश्यकताएं पूरी हो सकें। इसलिए समाज में अनेक क्रियाकलाप चलते हैं। समाज को श्रमिकों, उद्योगपतियों, प्रबंधकों, पुलिसकर्मियों, शिक्षकों, विद्यार्थियों, दस्तकारों इत्यादि की जरूरत पड़ती है। विशिष्ट प्रवीणता रखने वाले विभिन्न लोग इन अलग-अलग कार्यों को अंजाम देते हैं। इसलिए किसी भी समाज की पहली प्रकार्यात्मक पूवपिक्षा इन भिन्न-भिन्न भूमिकाओं का प्रभावशाली ढंग से वितरण है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि सही जगह सही लोग स्थित हों।

उपरोक्त प्रकार्यात्मक पूवपिक्षा के चार पहलू हैं। पहला, समाज में सारी भूमिकाएं पूरी की जानी होती हैं। सभी समाजों में अलग-अलग किस्म के पेशे, व्यवसाय चलते हैं। उनके अस्तित्व के लिए ये व्यवसाय अनिवार्य हैं। इसलिए इन व्यवसायों को भी पूरा किया जाना उतना ही जरूरी है। मगर वहीं इन व्यवसायों का किया जाना ही पर्याप्त नहीं है। अगर निश्चित कार्यों के लिए ऐसे गलत लोग चुन लिए जाते हैं जिनमें इन कार्यों को पूर्ण करने के लिए अनिवार्य प्रवीणता नहीं है तो इससे समाज में अस्थिरता उत्पन्न होगी। विशेषकर तब अगर ये स्थान महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, बिजली का उत्पादन करने वाली कोई कंपनी अगर एक ऐसे विख्यात उपन्यासकार को नौकरी पर रख लेती है जिसे विद्युत उत्पादन की कोई जानकारी नहीं है, तो इससे कंपनी का काम प्रभावित होगा। इससे कंपनी में सिर्फ अस्थिरता ही नहीं आएगी बल्कि बिजली की आपूर्ति में भी अस्थिरता आ जाएगी। इसलिए प्रकार्यात्मक पूवपिक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इन स्थानों को सबसे योग्य और सक्षम व्यक्तियों से भरना चाहिए। तीसरा, निर्दिष्ट कार्य के लिए सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति ही चुने जाएं। इसके लिए जरूरी है कि उन्हें इसके लिए प्रशिक्षित किया जाए। हर कार्य के लिए सबसे उत्तम व्यक्ति चुना जाए, इसे सुनिश्चित करने का सबसे प्रभावशाली उपाय प्रशिक्षण है जैसा कि हमने पीछे उदाहरण दिया है। अगर उस उपन्यासकार को विद्युत उत्पादन कंपनी का सर्वेसर्वा बनाने से पहले अगर उसे इस पद की जरूरतों, जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण मिला हो तो उसे इस पद के लिए सबसे उत्तम व्यक्ति माना जाएगा। अंततः भूमिकाओं का

निर्वाह कर्तव्यनिष्ठा से होना चाहिए। भूमिकाओं के प्रभावी निर्वाह को सुनिश्चित करने के लिए यह अत्यावश्यक है। कोई व्यक्ति प्रशिक्षित, दक्ष और अपने कार्य में श्रेष्ठ हो सकता है, मगर वह अपना कार्य पूरे समर्पण और निष्ठा से नहीं करता तो इससे पूरी व्यवस्था को क्षति पहुंचेगी। इसलिए समाज की प्रकार्यात्मक पूर्वाक्षेपाओं की पूर्ति के लिए ये चारों कारक अनिवार्य हैं।

6.4.2 स्तरीकरण के प्रकार्य

डेविस और मूर कहते हैं कि विभिन्न पदों पर सबसे उत्तम व्यक्ति चुने जाएं और वे अच्छा काम करें, यह सुनिश्चित करने के लिए सभी समाजों को किसी न किसी उपाय की जरूरत पड़ती है। उनके अनुसार यह सुनिश्चित करने के सबसे कारगर उपाय सामाजिक स्तरीकरण है। यह प्रणाली इसलिए प्रभावी है कि यह समाज में अलग-अलग पदों या स्थानों के लिए असमान पारितोषिक और विशेषाधिकार देती है। सभी लोगों को अगर समान पुरस्कार दिया जाए तो उनमें कठोर श्रम करने की कोई आकांक्षा नहीं रहेगी। इसके अलावा लोगों में जिम्मेदारी भरे पदों या चुनौतीपूर्ण कार्यों से बचने की प्रवृत्ति भी हो सकती है। उन्हें यह मालूम है कि वे कितना ही उत्कृष्ट कार्य करें और कैसा ही पद या स्थान उन्हें हासिल हो, उन्हें पारितोषिक तो समान ही मिलना है। इसलिए प्रणाली को सुचारु रूप से चलाने के लिए स्तरीकरण अनिवार्य है।

अभ्यास 2

समाज में स्तरीकरण की जरूरत क्यों है? अपने अध्ययन केन्द्र के सहपाठियों से इस विषय पर चर्चा कीजिए और आपको जो जानकारी मिलती है उसे नोटबुक में लिख लीजिए।

असमान पारितोषिक की इस व्यवस्था के दोहरे लाभ हैं। पहला लाभ यह है कि इससे लोग कुछ खास पदों या स्थानों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित होते हैं। पदों से जब अधिक पारितोषिक मिल रहा हो तो इन्हें पाने के लिए लोग अधिक प्रयत्न और परिश्रम करते हैं ताकि उनमें पर्याप्त योग्यता आ जाए। उदाहरण के लिए अगर लेक्चरर का पद अन्य पेशों से अधिक पारितोषिक देता हो तो मेधावी छात्र लेक्चरर बनने के लिए अनिवार्य अर्हताओं को पूरा करने के लिए प्रयत्न करेंगे। इससे समाज को अच्छे शिक्षक मिलेंगे। दूसरा, ये पारितोषिक पदों के भर जाने के बाद भी असमान रहने चाहिए ताकि जिन व्यक्तियों को इन पदों पर नियुक्त किया गया है उन्हें अपने कार्य को सुधारने की प्रेरणा मिले। लेक्चरर को अगर उनके अध्ययन और शोध कार्य के लिए पदोन्नति और वेतन वृद्धि के जरिए पुरस्कृत किया जाता है तो वे अपने कर्तव्य का निर्वाह निश्चय ही बेहतर ढंग से करते रहेंगे क्योंकि उनमें अधिक पारितोषिक पाने की लालसा रहेगी। असमान पारितोषिक पर आधारित स्तरीकरण प्रणाली इसी तरीके से समाज के लिए लाभकारी होती है।

डेविस और मूर के अनुसार स्तरीकरण की यह प्रणाली स्पर्धा पर आधारित समाज और प्रदत्त पर आधारित पारंपरिक समाज दोनों के लिए सही है। आधुनिक समाज में लोग अपनी प्रवीणता और शैक्षिक योग्यताओं के अनुसार पदों पर विराजते हैं। जो लोग अधिक योग्य और शिक्षित होते हैं उन्हें बेहतर पारितोषिक मिलते हैं और वे प्रतिष्ठित पदों पर आसीन होते हैं। पारंपरिक समाज में पद जन्म के जरिए प्रदत्त होते है। पारंपरिक रूप से जातियों में बंटे भारतीय समाज में लोगों को अपने पद या स्थान योग्यता के कारण नहीं बल्कि जन्म से मिले रुतबे या दर्जे से मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए, एक मजदूर का बेटा मजदूर ही बनेगा भले ही उसमें अन्य प्रकार के ऊंचे काम करने की बुद्धिमत्ता हो। इसी तरह एक जमींदार का बेटा जमींदार ही बनेगा भले ही वह इस कार्य के लिए पूर्णत: अक्षम क्यों न हो। इस तरह की व्यवस्था में असमान पारितोषिक का चलन इसकी कार्यकुशलता को उन्नत नहीं कर सकता। मगर डेविस-मूर तर्क देते हैं कि इस तरह के पारंपरिक समाज में पदों से जुड़े कर्तव्यों के निर्वाह पर जोर दिया जाता है। इसलिए एक मजदूर का बेटा मजदूर ही रहेगा पर अगर वह अपने कर्तव्य, अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह करता है तो उसे दूसरे तरीकों से पुरस्कृत किया जाएगा।

बोध प्रश्न 2

1) डेविस और मूर ने क्या-क्या प्रकार्यात्मक पूवपिक्षाएं बताई हैं?

....

....

....

....

....

2) नीचे दिए गए कथनों में बताइए कि कौन गलत है कौन सही:

   i) समाज में सभी पदों या स्थानों का समान प्रकार्यात्मक महत्व है
   ii) गिने चुने लोग ही प्रकार्यात्मक रूप से महत्वपूर्ण भूमिकाओं से निर्वाह कर पाते हैं।
   iii) प्रकार्यात्मक रूप से महत्वपूर्ण भूमिकाओं के निर्वाह के लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती।

6.4.3 डेविस और मूर की बुनियादी प्रस्थापनाएं

अभी तक हमने आपको समाज की प्रकार्यात्मक आवश्यकता के रूप में सामाजिक स्तरीकरण की भूमिका के बारे में बताया है। आधुनिक समाज में स्थिति/हैसियत (स्टैटस) का आधार व्यक्ति की उपलब्धि होती है न कि प्रदत्त। दूसरे शब्दों में व्यक्ति ही हैसियत या उसका रुतबा उसकी योग्यता से तय होता है न कि उसके जन्म से। ऐसा समाज बड़ा ही गतिशील और परिवर्तनकारी है और अपनी प्रकार्यात्मक पूवपिक्षाओं को पूरा करने में सक्षम रहता है। डेविस और मूर के अनुसार इसके लिए कुछ प्रस्थापनाएं हर समाज में समान रूप से विद्यमान होती हैं:

1) प्रत्येक समाज में कुछ पद या स्थान कार्य की दृष्टि से अन्य से अधिक महत्वपूर्ण होते है। इन पदों में अधिक पारितोषिक और प्रतिष्ठा मिलती है। उदाहरण के लिए, भारतीय प्रशासनिक सेवा को अन्य नौकरियों से अधिक प्रतिष्ठा हासिल है।

2) इन भूमिकाओं के निर्वाह के लिए सिर्फ गिने-चुने लोगों में अनिवार्य योग्यता या क्षमता होती है। इसका उदाहरण हम आइएएस (भारतीय प्रशासनिक सेवा) परीक्षा में देख सकते हैं, जिसमें बैठते तो हजारों लोग हैं लेकिन कुछ ही प्रत्याशी सफल हो पाते हैं।

3) इन पदों या स्थानों के लिए अधिकतर एक लंबे और गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। जो लोग इन पदों को अर्जित करते हैं उन्हें इसके लिए बड़ा त्याग करना पड़ता है। हमारे समाज में आयुर्विज्ञान, इंजिनीयिरिंग, चार्टर्ड एकांटेसी जैसे कुछ विशेष पेशों में गहन और खर्चीले प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। तिस पर इस प्रशिक्षण में कई वर्ष लगते हैं। डेविस और मूर इसे त्याग की संज्ञा देते हैं और इसलिए ऐसे अभ्यार्थियों को अधिक आर्थिक पारितोषिक और समाज में अधिक प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए।

उपरोक्त प्रस्थापनाएं इस वास्तविकता पर आधारित हैं कि आधुनिक समाजों में उपलब्धि के मूल्यों ने प्रदत्तकारी प्रतिमानों की जगह ले ली है। इन समाजों में व्यक्ति के जन्म से ज्यादा उसकी योग्यता को महत्व दिया जाता है। व्यवसाय क्रम परंपराबद्ध होते हैं और जो लोग शीर्ष पर आसीन रहते हैं उन्हें निचले स्तर के लोगों से अधिक पारितोषिक और प्रतिष्ठा मिलती है। उच्च पारितोषिक की इस व्यवस्था के साथ-साथ यह वास्तविकता लोगों को अपने दायित्व या कार्यों को उत्तम ढंग से पूरा करने के लिए प्रयत्नशील रहने के लिए प्रेरित करती है कि हर कोई इन पारितोषिकों के लिए स्पर्धा कर सकता है। परंतु इन पारितोषिकों को सिर्फ वही लोग पा सकते हैं जो सुपात्र हैं, सुयोग्य और सक्षम हैं। मगर इस तरह की प्रणाली के कायम रहने के लिए सबसे पहले विभिन्न व्यवसायों की महत्ता को लेकर सामाजिक सहमति अनिवार्य है। इसका सीधा सा मतलब यह है कि श्रेष्ठत के क्रम में व्यवसायों का श्रेणीकरण समाज के मूल्य मतैक्य पर आधारित होता है।

बॉक्स 6.02

डेविस और मूर के अनुसार यह तय करने में कठिनाई आ सकती है कि कार्य की दृष्टि से कौन से पद अन्य पदों से अधिक महत्पपूर्ण हैं। संभव है कि जिस पद के लिए अत्याधिक पारितोषिक दिया जा रहा हो जरूरी नहीं कि प्रकार्यात्मिक रूप से वह महत्वपूर्ण हो। असल में यही इस सिद्धांत की एक बड़ी कमजोरी है जिसे इस सिद्धांत के आलोचकों ने उठाया है (इस बारे में हम आगे बताएंगे)। डेविस और मूर के अनुसार कोई उच्च पद कार्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है या नहीं, इसका मूल्यांकन दो तरह से किया जा सकता है। पहला, इसका मूल्यांकन हम यह देखकर कर सकते हैं कि कार्य की दृष्टि से अमुक पद किस सीमा तक विशिष्ट और अनूठा है। इसका यह अर्थ होगा कि इस तरह का कार्य कोई अन्य पद नहीं कर सकता।

यहां यह तर्क दिया जा सकता है कि किसी कारखाने का इंजीनियर उसके साथ काम करने वाले दक्ष श्रमिक से भिन्न नहीं होता। इसलिए इंजीनियर को मिलने वाले अधिक पारितोषिक का कोई औचित्य नहीं। इसके प्रत्युत्तर में डेविस और मूर तर्क देते हैं कि कार्य की दृष्टि से इंजीनियर अधिक महत्वपूर्ण होता है क्योंकि उसमें एक दक्ष श्रमिक की प्रवीणताएं होती हैं। इसके अलावा उसमें वे प्रवीणताएं भी होती हैं जो एक दक्ष श्रमिक में नहीं होतीं। इसलिए एक इंजीनियर एक दक्ष कामगार तो हो सकता है मगर एक दक्ष श्रमिक इंजीनियर नहीं हो सकता। दूसरा उपाय इसका मूल्यांकन करना है कि "जिस पद (या स्थान) की बात की जा रही है उस पर अन्य पद (स्थान) किस सीमा तक आश्रित हैं।" एक इंजीनियर मजदूरों से इसलिए भी ज्यादा महत्वपूर्ण है कि उन्हें अपने काम के लिए उसके निर्देशों पर निर्भर रहना पड़ता है।

संक्षेप में डेविस और मूर ने सामाजिक असमानता के कारणों की व्याख्या देकर पारसंस के विचारों को आगे बढ़ाया। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि असमान पारितोषिक और प्रतिष्ठा पर आधारित स्तरीकरण प्रणाली समाज में व्यवस्था बनाए रखने और उसकी उन्नति सुनिश्चित करने के लिए जरूरी है।

6.5 डेविड और मूर के सिद्धांत की समालोचना

ऊपर से डेविस और मूर का सिद्धांत तर्कसंगत और यथार्थवादी लगता है। आखिर सभी समाज सामाजिक और व्यावसायिक गतिशीलता में विश्वास करते हैं। मगर यह उस समाज के ठीक उलट है जिसमें कोई गतिशीलता नजर नहीं आती क्योंकि लोगों को भूमिकाएं उनके जन्म के अनुसार निर्दिष्ट की जाती हैं। भारत का संविधान यूं सभी नागरिकों को समान अधिकार देता है। यह जाति, नस्ल, धर्म और सामाजिक-लिंग (जेंडर) के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को अवैध करार देता है। यह आधुनिक समाजों की तरह है जिनमें व्यक्ति की योग्यता को उसके जन्म से अधिक महत्व दिया जाता है। इसके मद्देनजर डेविस-मूर सिद्धांत यथार्थवादी दिखाई देता है क्योंकि यह समाज में व्याप्त असानताओं की व्याख्या करता है मगर इस सिद्धांत की तरह-तरह से आलोचना हुई है। असल में जब 1945 में *अमेरिकन जरनल ऑफ सोशियोलॉजी* में इसका प्रकाशन हुआ, तो इसने समाजशास्त्रियों को काफी आकर्षित किसा। इस दौर के अनेक विख्यात समाजशास्त्रियों ने इस सिद्धांत के समर्थन या आलोचना में लेख लिखे। इस पत्रिका ने एक विशेष अंक निकाला जिसमें उसने इन लेखों को प्रकाशित किया। ऐसा माना जाता है कि इस विशेषांक में प्रकाशित सबसे आलोचनात्मक लेखों में सबसे गहरा लेख मेल्विन ट्यूमिन का था। अब हम उन बिंदुओं पर चर्चा करेंगे जो ट्यूमिन अपनी इस मीमांसा में उठाए थे।

ट्यूमिन ने डेविस-मूर सिद्धांत की आलोचना इस बात से शुरू की कि कार्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण पदों को काफी ज्यादा पुरस्कृत किया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पारितोषिक असमान होते हैं क्योंकि कुछ को दूसरों से अधिक पारितोषिक मिलता है। मगर निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता है कि कार्य की दृष्टि से पद अधिक महत्वपूर्ण रहते हैं। ऐसा संभव है कि किसी कारखाने में कुछ मजदूर उत्पादन को बनाए रखने के लिए प्रबंधकों को उनसे बेहतर पारितोषिक मिलता है। ऐसी स्थिति में अगर मजदूरों को हटा दिया जाता है तो इससे उत्पादन में अवश्य ही रुकावट आएगी मगर कुछ प्रबंधकों को हटा दिया जाता है तो संभव है कि इससे उत्पादन प्रभावित ही न हो। इसलिए किसी पद की प्रकार्यात्मक महत्ता कैसे

तय हो? समाज को डॉक्टरों, वकीलों, श्रमिकों और किसानों की जरूरत पड़ती है। ये सभी स्थान या पद समाज के अस्तित्व के लिए प्रकार्यात्मक रूप से महत्वपूर्ण हैं। डेविस और मूर ने इन पदों की प्रकार्यात्मक महत्ता के मूल्यांकन का कोई उपाय नहीं बताया है। असल में कुछ समाजशास्त्रियों का तर्क है कि पद की महत्ता निजी मत से जुड़ी है और यह वस्तुनिष्ठ प्रतिमान नहीं हो सकती।

ट्यूमिन तर्क देते हैं कि लोगों को दिए जाने वाले असमान पारितोषिक जरूरी नहीं कि पदों की प्रकार्यात्मक महत्ता के अनुसार हों। पदों के महत्व के निर्धारण में सत्ताधिकार या शक्ति की भूमिका और इससे ऊंचे पारितोषिक हथिया लेना भी पारितोषिक को तय करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। उदाहरण के लिए, भारत में संगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों को असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मजदूरों से बेहतर वेतन और सामाजिक सुरक्षा मिल रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि संगठित क्षेत्र के कर्मचारी मजदूर संघों में संगठित हैं और उनमें असंगठित क्षेत्र के कर्मचारियों के मुकाबले सौदेबाजी की क्षमता अधिक होती है। असंगठित क्षेत्र के मजदूर संघों में संगठित नहीं होते और उन्हें कोई सुरक्षा हासिल नहीं होती। दोनों क्षेत्रों में काम एक ही किस्म का होता है लेकिन पारितोषिक और प्रतिष्ठा संगठित क्षेत्र में अधिक है। इसलिए उच्च पारितोषिक के निर्धारण में प्रकार्यात्मक महत्व से अधिक भूमिका सत्ताधिकार या शक्ति की होती है।

ट्यूमिन के अनुसार उच्च पारितोषिक को इस आधार पर उचित ठहराना सही नहीं है कि इन पदों के लिए भारी प्रशिक्षण शामिल होता है। वे कहते हैं कि प्रशिक्षण में जरूरी नहीं कि व्यक्ति को त्याग करना पड़ता हो क्योंकि इससे व्यक्ति नई प्रवीणताएं और ज्ञान अर्जित करके लाभान्वित होता है। इसके अलावा ऐसे मामलों में मिलने वाले पारितोषिक प्रशिक्षण के दौरान किए जाने वाले त्याग से कहीं ज्यादा होते हैं। ट्यूमिन इस प्रस्थापना को भी सही नहीं मानते कि असमान पारितोषिक लोगों को अपने काम को सुधारने के लिए प्रेरित करते हैं। यथार्थ यह है कि इस प्रेरणा से पहले कुछ अवरोध आते हैं। स्तरीकरण प्रणाली मेधावी लोगों को समान बेहतर अवसर उपलब्ध नहीं होने देती। हर समाज में सामाजिक भेदभाव किसी न किसी रूप में मौजूद रहता है जो एक अवरोध का काम करता है। फिर भारतीय समाज तो भारी विषमताओं से भरा है जिसमें गरीब बच्चे के लिए अच्छी शिक्षा पाना इतना कठिन है कि वह अपनी स्थिति सुधारने की कल्पना भी नहीं कर सकता। यही स्थिति अमेरिका जैसे शक्तिशाली देश की भी है, जहां काले और अन्य अश्वेत लोगों (इन लोगों को वहां "कलर्ड" कहा जाता है) की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। इसलिए वे बेहतर पदों/स्थानों के लिए स्पर्धा नहीं कर पाते हैं।

असमान पारितोषिक प्रणाली में यह संभावना भी बनी रहती है कि जो लोग ऊंचे पारितोषिक पा रहे हैं उनका यही प्रयास रहेगा कि उनके बच्चों को भी वही पारितोषिक मिले। ये लोग अन्य लोगों को उन स्थानों/पदों में आने से रोकने का प्रयास भी करेंगे जिनमें उनके बच्चे आसीन हैं। उदाहरण के लिए एक चिकित्सक यही चाहेगा कि उसका बच्चा उसका पेशा ही अपनाए। वह सिर्फ यही प्रयास नहीं करेगा कि उसका बच्चा इस पेशे में आ जाए बल्कि वह अन्य बच्चों को इस पेशे में आने से रोकने का प्रयास भी करेगा। टी.बी. बोटोमोर ने अपनी पुस्तक *एलीट्स ऐंड सोसायटीज* में बताया है कि ब्रिटेन और फ्रांस जैसे विकसित देशों में भी प्राशसनिक सेवाओं में अधिकांशतः प्रशासनिक अधिकारियों के बच्चे ही हैं।

यह सच है कि जो लोग सामाजिक क्रम परंपरा में सबसे निचले क्रम में हैं उनके पास अपने ज्ञान और प्रवीणताओं को उन्नत बनाने के लिए आवश्यक साधन सुलभ नहीं होते जिससे कि वे बेहतर पद पाने के लिए सुयोग्य बन सकें। ट्यूमिन कहते हैं कि असमान पारितोषिकों के जरिए प्रेरणा एक ऐसी व्यवस्था में संभव हो सकती है "जिसमें सभी संभावित योग्य व्यक्तियों को प्रवेश और प्रशिक्षण सही मायने में समान रूप से सुलभ हो। तभी विभेदी पारितोषिकों को हम प्रकार्यात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण ठहराने की सोच सकते हैं।" लेकिन अधिकांश समाजों में ऐसा विरले ही संभव हो पाता है। इसलिए ट्यूमिन जोर देकर कहते हैं कि "स्तरीकरण प्रणाली स्पष्टतया अवसर की पूर्ण समानता के विकास के प्रतिकूल है।" ट्यूमिन तर्क देते हैं कि जो लोग विभेदी पदों/स्थानों से लाभान्वित हो रहे हैं वे निश्चय ही प्रकार्यात्मक रूप से महत्वपूर्ण पदों को कुटिलता से हथिया सकते हैं। इसलिए ट्यूमिन कहते हैं कि सामाजिक स्तरीकरण का प्रकार्यवाद सिद्धांत यथार्थवादी नहीं है।

6.6 सारांश

सामाजिक स्तरीकरण सभी समाजों में है। हर समाज की अपनी एक क्रम परंपरा है जिसमें सभी व्यक्तियों का अपना-अपना स्थान नियत है। टैलकॉट पारसंस, किंग्सले डेविस और विल्बर्ट मूर जैसे सामाजिक संरचना प्रकार्यात्मकतावादी सिद्धांतकारों के सामने सबसे बड़ी समस्या यह जानने की थी कि सामाजिक क्रम परंपरा में व्यक्ति किस तरह अलग-अलग स्थान पाते हैं और हमें इन भेदों को आखिर क्यों जरूरत पड़ती है। इन सिद्धांतकारों का यह निष्कर्ष था कि सभी समाजों में स्तरीकरण सिर्फ अपरिहार्य ही नहीं है। बल्कि यह उनके लिए अनिवार्य इसलिए भी है कि यह समाज में स्थायित्व और व्यवस्था बनाए रखता है। टैलकॉट पारसंस ने स्पष्ट किया है कि समाज के सभी सदस्य इन असमानताओं को स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि वे यह समझते हैं कि समाज में व्यवस्था और स्थिरता को कायम रखने का यही एकमात्र तरीका है। इसीलिए सामाजिक स्तरीकरण के पैटर्न और सामाजिक असमानता समाज के मूल्यों का हिस्सा बने। इसलिए उन्होंने सामाजिक प्रणाली में स्तरीकरण के स्वरूप को तय करने में मूल्य मतैक्य की भूमिका पर विशेष बल दिया।

डेविस और मूर ने पारसंस के तर्क को आगे बढ़ाया और यह जानने का प्रयत्न किया कि कुछ स्थानों की सामाजिक प्रतिष्ठा अलग-अलग क्यों होती है। उन्होंने यह पाया कि समाज के लिए जो स्थान अधिक महत्वपूर्ण हैं उन्हें उच्च पारितोषिक और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। उन्होंने इसके कारण बताए।

मेल्विन ट्यूमिन ने डेविस और मूर की प्रस्थापनाओं की जो समालोचना की उससे स्पष्ट होता है कि प्रकार्यात्मक महत्ता ही यह निर्धारित करने की एकमात्र कसौटी नहीं है कि कौन-सा दर्जा उच्च पारितोषिक देगा।

इसके अलावा अन्य कारक भी हैं जैसे सत्ताधिकार और जन्म पर आधारित हैसियत/स्थिति ('स्टैटस')। यहां तक कि खुले समाज भी इन प्रतिमानों से प्रभावित होते हैं। ट्यूमिन इस सिद्धांत के सभी तर्कों को चुनौती देते हैं और उनका मानना है कि स्तरीकरण समाज के सदस्यों के लिए वैमनष्यकारी हो सकता है।

6.7 शब्दावली

मूल्य मतैक्य : सामाजिक प्रणाली के सभी सदस्यों में यह सहमति कि सबके लिए क्या स्वीकार्य होगा।

प्रकार्यात्मक : ऐसे मूल्य जो समाज में व्यवस्था और स्थिरता बनाए रखने और पूर्वाक्षेपाएं इस प्रकार समाज के अस्तित्व के लिए जरूरी हैं।

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

आर. बेंडिक्स और एस.एम. लिप्सेट (संपा.) *क्लास, स्टैटस ऐंड पावर*, रुटलेज ऐंड केगन पॉल, 1967

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) प्रकार्यात्मक सिद्धांत यह बताता है कि समाज किस तरह से जीवित रह पाता है। प्रकार्यवादी समाज को एक जीव के रूप में देखते हैं। इस जीव के अनेक अंग हैं। इनमें हर अंग अलग होता है मगर सभी एक समेकित इकाई के रूप में काम करते हैं और उसे स्थिरता प्रदान करते हैं।

2) मूल्य असल में साझे विश्वास हैं। मूल्य मतैक्य इसलिए उभरता है क्योंकि समाज के सभी सदस्य अपने दैनिक जीवन में स्थिरता और व्यवस्था चाहते हैं। मूल्य मतैक्य समाज में व्यवस्था, स्थिरता और सहकार/सहयोग का आधार होता है। यही मूल्य व्यवस्था समाज में श्रेणीकरण और स्तरीकरण को जन्म देती है।

बोध प्रश्न 2

1) किसी भी समाज की सबसे पहली जरूरत कारगर ढंग से विभिन्न भूमिकाओं का वितरण है। इसके चार पहलू हैं:

   i) समाज में सभी भूमिकाएं पूरी की जानी चाहिए।

   ii) इन स्थानों को सबसे योग्य और सक्षम व्यक्तियों से भरना चाहिए।

   iii) किसी कार्य की पूर्ति के लिए प्रशिक्षण जरूरी है।

   iv) भूमिकाओं को सचेतन होकर किया जाना चाहिए।

2) i) गलत

   ii) सही

   iii) गलत